जी हाँ... मैं लिखता हूँ...
दुख पर काबू पाने के लिए

प्रफुल्ल कोलख्यान

बहुत ही संक्षेप और संकेत में कहना चाहता हूँ कि मैं दुख पर काबू पाने के लिए लिखता हूँ। दुख चारो तरफ पसरा है। मेरा जन्म न तो महानता की किसी चोटी पर हुआ और न विकास ही किसी किसी महर्षि के अशीर्वाद की कोमल, सुरक्षित, हितकारी प्रकाशवलय की दिव्य परिधि में हुआ। पढ़ाई-लिखाई का सुयोग भी बहुत नहीं था और जो था उसका भरपूर इस्तेमाल करने की चेतना भी समय पर विकसित नहीं हो सकी थी। ज्ञान और अनुभव भी तो बहुत ही सीमित है, साहित्य साधना के लिहाज से तो बिल्कुल ही अपर्याप्त। लेकिन ये सब मेरे दुख के कारण नहीं हैं।

मेरा जन्म उसी जमीन पर हुआ जिस जमीन पर महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था। महात्मा बुद्ध को मुस्कुराता हुआ दिखलाने की चाहे जितनी भी मसखरी की जाये लेकिन दुनिया जानती है कि उन्होंने दुख का कारण जन्म को बताया और इस जन्म में जीवन का अर्थ भी समाहित है। जीवन को दुखमय बनानेवाले लोग बुद्ध की मुस्कान के लिए नुस्खे का इंतजाम कर रहे हैं। बुद्ध का दुख मुस्कुराते हुए भी कभी कम नहीं हुआ। दुखिया दास कबीर थे जो जागते और रोते थे। दुख ही निराला के जीवन की कथा रही। दुख बाबा

नागार्जुन को कटहल के छिलके जैसी जीभ से चाटता रहा। ये कुछ व्यक्तियों के नाम या संदर्भ भर नहीं हैं। बल्कि अपने-अपने प्रकार से मनुष्य और खासकर भारतीय मनुष्य की विकास यात्रा के कई-कई चरणों के नाम और संदर्भ हैं। ये महान लोग दुखी थे इसीलिए मैं भी दुखी हूँ, ऐसी बात नहीं है। असल बात यह है कि अपने दुख के साथ-साथ जिस प्रकार के लोगों के दुख से ये दुखी थे उसी प्रकार के लोगों में से मैं भी हूँ।

समग्र

और वास्तविक दुख या सुख कभी भी व्यक्तिगत मामला नहीं हुआ करता है। दुख और सुख हमारे सामाजिक जीवन का ही व्यक्त्विगत सारांश होता है। दुख है कि आज भी जिधर अन्याय है, उधर ही शक्ति है; बल्कि यह कि जहाँ शक्ति है वहीं अन्याय है। दुख है कि जीवन शक्ति के बिना चल नहीं सकता और अन्याय को झेल नहीं पाता। दुख है कि आज भी अंधेरे में ब्रह्मराक्षस दनदनाता हुआ अपने विकास की सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। दुख है कि आज हमारी प्रेरणा किसी की प्रेरणा से इतनी भिन्न नहीं रह गयी है कि जो किसी के लिए अन्न है वह हमारे लिए विष हो। दुख है कि मुक्तिबोध भी हमारे लिए ब्रांड बनाकर ही रख लिए गये। दुख है कि आज हर आदमी चौड़ी सड़क और पतली गली में घनी बदली लेकिन सूरज की उपस्थिति में ही रघुबीर सहाय का रामदास बना बेचैन टहल रहा है। दुख है कि जो निहत्थे और निरपराध हैं वे मार दिये जायेंगे नहीं, मार दिये जा रहे हैं चाहे नरसंहार से त्रस्त हरिजनगाथा के नागरिक हों, सफदर हाशमी हों, चंद्रशेखर हों, फादर स्टेंस हों, उनके बच्चे हों, आनंद हों या ....।

दुख है कि रोज बनती हुई दुनिया के इस नये इलाके में हम अपना घर नहीं ढूढ़ पा रहे हैं। दुख है कि आज हमारी रहनी बत्तीस दाँतों के बीच बेचारी जीभ की तरह है। दुख है कि हमारे गोदामों में अनाज भरे पड़े हैं, लाखो टन अनाज रखने रखने की जगह नहीं है और करोड़ो लोग गरीबी रेखा के नीचे भूखे पेट जीने को मजबूर हैं। दुख है कि गल्ले की कचहरी में भूख का मुकद्द-मा खारिज हो गया। दुख है कि होरी और हीरा ही नहीं गोबर भी आत्म हत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। दुख है कि जिस देश में करोड़ो के भूख से बेहाल होने की ताजा रपट है उस देश में हाजमोला की इतनी अधिक खपत है। दुख है कि टुकड़ी-टुकडी साँस गिरवी रखी जा चुकी है और हम नाक की ऊँचाई नापने में व्यस्त हैं। दुख है कि हमारे लेखकीय जीवन में ही एक ओर सोवियत संघ का पतन हो गया तो दूसरी ओर बाबरी मस्जिद के ढाँचा को उन्मादी शक्तियों ने ढहा दिया। दुख है कि यह उन्माद नाना रूप धर कर जीवन के बड़े आयतन पर दखल जमा रहा है। सोवियत संघ

किसी एक देश की राज्य-व्यवस्था ही नहीं था बहस की गुंजाइश रखते हुए भी हमारे जैसे लोगों के सामाजिक सपनों का सराय भी था। बाबरी मस्जिद सिर्फ इबादत की जगह नहीं थी, बल्कि हम जैसे लोगो के लिए सब कुछ के बावजूद सहअस्तित्व और सहिष्णुता की प्रतीक भी थी। दुख है कि सामाजिक न्याय का नारा भी अंतत: छल ही साबित हुआ। दूसरी आजादी भी पहली आजादी की सहोदरा ही निकली। हमारा सपना लूट लिया गया और हम लड़ नहीं पाये साथी। न हमारी ओर से कोई और ही कारगर ढंग से लड़ पाया।

दुख है कि समय का पहिया ऐसा चला कि इस देश में जनतंत्र का सपना संसद में ही घायल हो गया। दुख है कि ठेले पर लादकर इस जनतंत्र को बाजार में पहुँचा दिया गया और विरोध में उठनेवाले हाथ प्रसाद पाकर अपनी-अपनी काँख ढकने के लिये लौट रहे हैं। दुख है कि विकास के वर्णमाला से बाहर मँजी हुई शर्म के जनतंत्र की नीम रोशनी में अपनी ही छाया से भयभीत देश की अस्सी करोड़ जनता के मन में सवाल आकार पा रहा है कि वह कौन लगता है हमारा, आपका, इस देश का? पूछता है कि चिथड़े की बीमारी का कोई शर्त्तिया इलाज है थान के पास? पूछता है कि गुदड़ी और सूट के बीच बुझारत के लिए रिश्ते की कौन-सी जमीन शेष है?

दुख है कि साहित्य का होने का दावा करता हूँ लेकिन, मेरे पास वह भाषा साबुत नहीं है जिसमें उसे बता सकूँ कि उसे प्यार करना चाहिए यह उसका देश है। दुख के फैलाव या पसार को उसके स्वरूप और कारणों को समझने के प्रयास में मुझे ठाम-कुठाम की यात्रा करनी पड़ती है। कई-कई बार वर्जित प्रदेश की भी यात्रा करनी पड़ती है। वैसे मित्रो हिंदी के समकालीन समाज का साहित्य और कविता से जिस प्रकार का लगाव दीखता है उससे तो कविता अपनेआप में एक वर्जित प्रदेश बनकर रह गयी है। दुख है कि वर्जित प्रदेश की नागरिकता का अवैध प्रार्थनापत्र हाथ में लिए मैं आजीवन भटकता रहा। संतोष की बात यह है कि इस दुख में मैं अकेला नहीं हूँ और भी बहुत सारे लोग हैं जो अपने-अपने तरीके से हम जैसों का दुख कम करने के उद्यम में अधिक तत्परता से लगे हुए हैं।

दुख पर काबू पाने के लिए मेरे पास जो सबसे विश्वसनीय सहारा है उसका नाम साहित्य है। मँजी हुई शर्म के जनतंत्र के बाजार में वह चाहे अंधे की लकड़ी सरीखी-सी ही क्यों न हो, मगर अपना सहारा तो यही है। जी हाँ.. मैं लिखता हूँ... दुख पर काबू पाने के लिए...!!

इस सामग्री के उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान